अध्याय-3

पर्यावरण पर आर्थिक क्रियाओं का प्रभाव

(Impact of Economic Activities on Environment)

मानव की आर्थिक क्रियाओं का इतिहास इस पृथ्वी पर लगभग 40 लाख वर्ष पुराना है। प्रारंभिक परिवर्तन पर्यावरण पर प्रभाव नहीं डाल पाये क्योंकि मानव की आवश्यकताएँ सीमित होने से हम पर्यावरण की सहन सीमा में ही आर्थिक क्रियाएँ कर पाये। विगत दस हजार वर्षों से पर्यावरण पर आर्थिक क्रियाओं का स्वरूप बदला जब मानव ने पेड़ पौधों तथा जानवरों का पालतूकरण (Domestication of Plants and Animals), प्रारंभ किया। धीरे-धीरे प्रौद्योगिकी विकास द्वारा मानव ने पर्यावरण के दोहन को तीव्र किया तथा जैविक ईंधन एवं खनिजों के निरंतर दोहन के फलस्वरूप लम्बे समय से संतुलित अवस्था में चला आ रहा पर्यावरण मानव के आर्थिक नियंत्रण में आ गया।

मानव ने अपने क्रियाकलापों द्वारा पृथ्वी पर प्रत्येक जगह विभिन्न रूपों में परिवर्तन किये हैं। प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का अनियोजित व अविवेकपूर्ण दोहन करके अनेक पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है। कृषि विकास के लिए वनोन्मूलन करके भूमि उपलब्धता बढ़ाई तथा सिंचाई विकास करके जल संसाधनों का दोहन किया, जिससे जल संकट उत्पन्न हुआ। मानव समाज विकास की दिशा में आगे बढ़ता गया तथा दीर्घकाल में पुनः पूरित संसाधनों को लघु अवधि में लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से उपयोग में लिया गया। प्रारम्भ में ये सभी कार्य प्रकृति की सहन सीमा के अन्दर थे। लेकिन बाद में इनके दोहन की दर जीवमण्डल वहन क्षमता से बाहर हो गई तो अनेक विश्वव्यापी समस्याएँ उत्पन्न हुईं तथा वर्तमान समय में कुछ पर्यावरणीय समस्यायें इतनी अधिक प्रबल हो गई हैं, जिनके प्रभाव इतने प्रबल हो गये हैं कि इन्होंने अपना विश्वव्यापी रूप ले लिया है। इनमें हरितगृह प्रभाव, विश्व तापमान में वृद्धि, जलवायु में परिवर्तन, ओजोन क्षयीकरण, अम्ल वर्षा, सूखा एवं बाढ़ आदि प्रमुख हैं, जबकि कुछ पर्यावरणीय प्रभाव स्थानीय स्तर पर उत्पन्न होकर विश्वव्यापी रूप ले रहे हैं। उदाहरणार्थ विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न दर से वनोन्मूलन हुआ लेकिन विश्व स्तर पर इनके संचयी प्रभाव से जलवायु में परिवर्तन हुआ है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मानव द्वारा प्रकृति का तीव्र शोषण किया गया, परिणामस्वरूप यहाँ भी अनेक पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो गईं। भारत में उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं में वनोन्मूलन, मृदा अपरदन, मरुस्थलीकरण, विभिन्न प्रकार के पर्यावरण प्रदूषण, वन्य जीवों का विनाश, भूजल का तीव्र दोहन आदि प्रमुख हैं। स्पष्ट है वर्तमान में मानवीय गतिविधियों के पर्यावरण के प्रति अविवेकपूर्ण दोहन की प्रकृति अपनाने के कारण पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न होती हैं, जिनका पृथ्वी पर विभिन्न रूपों में कमोबेश प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। मानव के निरन्तर पर्यावरण पर बढ़ते प्रभाव से वर्तमान में निम्नांकित पर्यावरणीय समस्याएँ उद्‌भूत हुई हैं :-

(1) विश्व तापमान में वृद्धि (Global Warming)

औद्योगिकरण की बढ़ती प्रक्रिया के कारण वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ने से धरती की सतह से परावर्तित किरणों द्वारा उत्सर्जित होने वाली तापीय ऊर्जा को वायुमण्डल से बाहर जाने से रोकती है। इस प्रकार तापीय ऊर्जा के वायुमण्डल में सान्द्रण से धरती के औसत तापमान में वृद्धि होती है, जिसे विश्वव्यापी तापन कहते हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि विश्व तापमान में वृद्धि की कहर से पृथ्वी की जलवायु परिवर्तित होगी, जिसके तहत वर्षा में कमी आयेगी। वर्षा की कमी का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि पर पड़ेगा तथा सूखे की स्थिति उत्पन्न होगी। तापमान वृद्धि एवं वर्षा की कमी के

कारण वन क्षेत्र तेजी से घटेगा जिससे जैव विविधता का भी ह्रास होगा। तापमान वृद्धि के लिए कार्बन डाई आक्साइड के अतिरिक्त मीथेन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) यौगिक तथा नाइट्रस आक्साइड भी उत्तरदायी है। भूमण्डल के गरमाने से नजदीकी और दूरगामी दोनों प्रभाव मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए घातक होंगे। निकट प्रभावों में तापीय वृद्धि के कारण मृत्यु, सूखा, तूफान, बाढ़ एवं पर्यावरण अवनयन प्रमुख हैं। दूरगामी प्रभावों में संक्रमण एवं सम्बन्धित रोग, खाद्य समस्या, तूफान, अकाल तथा जैव विविधता को खतरा पैदा होगा। इनके अतिरिक्त ताप वृद्धि से ध्रुवीय एवं उच्चपर्वतीय बर्फ पिघलने से समुद्री किनारे पर स्थित कई शहर डूब सकते हैं।

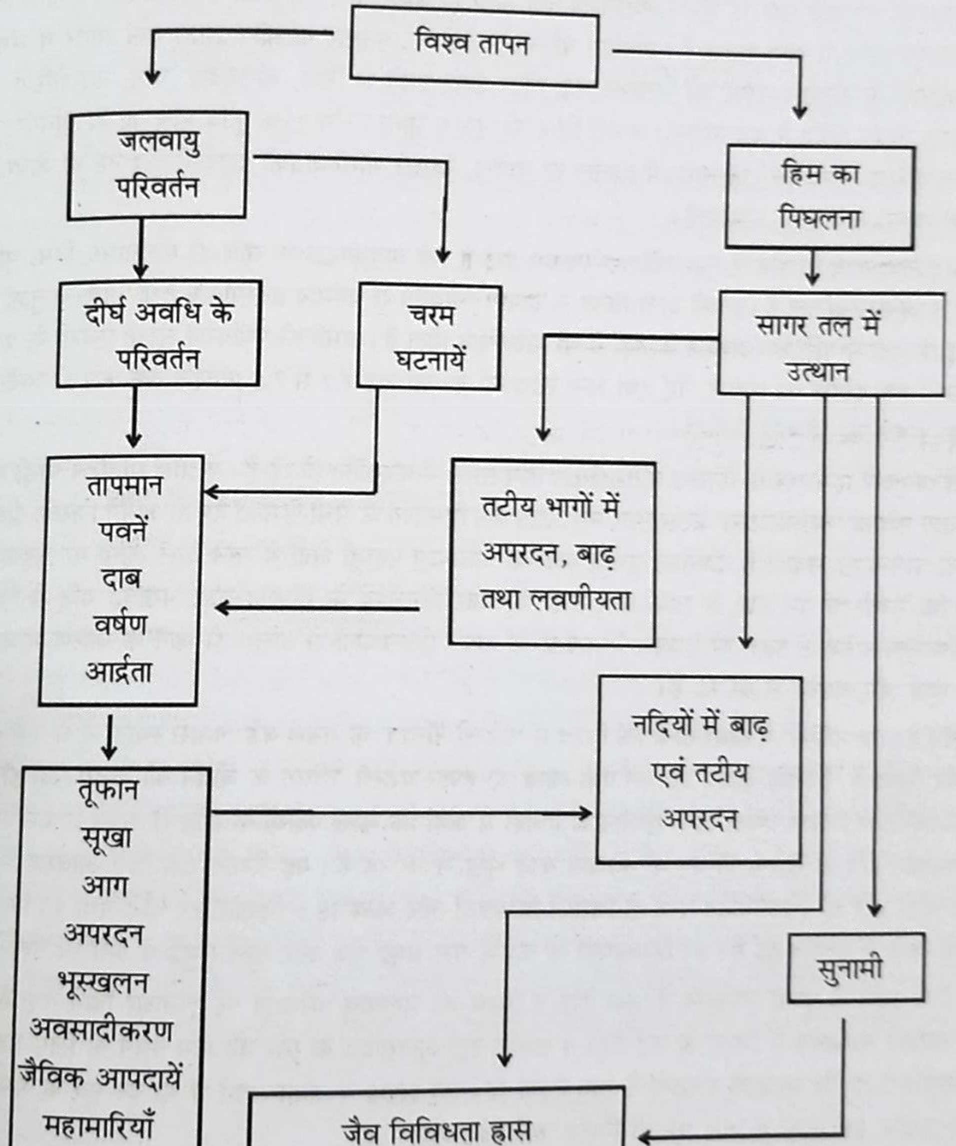

चित्र-3.1 : *विश्व तापन के पर्यावरणीय प्रभाव की सम्भावित अनुक्रियात्मक श्रृंखला। विश्व तापन के क्रमिक प्रभाव प्रत्यक्ष (जलवायु परिवर्तन) तथा अप्रत्यक्ष (सागर तल में उत्थान द्वारा) रूप में एक गंभीर समस्या का रूप लेंगे*

(Chris Park, 1997, The Environment)

मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार पिछली सदी में 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ा है। विश्व जलवायु परिवर्तन के अन्तर्सर पेनल (Intergovernmental Panel on Climate Change- IPCC) के वैज्ञानिकों ने जनसंख्या, आर्थिक व तकनीकी विकास को मद्दे रखते हुए हरित गृह प्रभाव की तीव्रता का आकलन करके बताया गया कि अगली सदी के मध्य में वातावरण में कार्बनडाई ऑक्सा की मात्रा औद्योगिक युग से पूर्व की तुलना में दुगुनी हो जायेगी, फलस्वरूप पृथ्वी के औसत तापमान में प्रति दशक 3°C की द वृद्धि होगी तथा सन् 2025 तक 1°C तथा 2050 तक 1.5°C तापमान बढ़ जायेगा। वातावरण का तापमान 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सि की वृद्धि से ही महासागरों का जलस्तर 10.25 सेंटीमीटर ऊँचा हो गया। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने पूर्वानुमान लगाया है कि अग सदी के दौरान महासागरों का जल स्तर 15 से 95 सेंटीमीटर तक ऊँचा हो सकता है। महासागरों और कैरिबियन सागर तट पर अनेक नगर व महानगर सागर में समा सकते हैं। प्रतिष्ठित पत्रिका 'टाइम' के अनुसार मालद्वीप 2025 तक सागर में समा जाये मेरीलैण्ड विश्वविद्यालय के अनुसार सागर का जलस्तर एक मीटर ऊपर उठने से मिस्र, बांग्लादेश, चीन, नाइजीरिया के लग 9.40 करोड़ लोगों का जीवन संकट में पड़ जायेगा। अकेले मिस्र की भूमध्य सागर तटीय 15% कृषि भूमि नष्ट हो जायेगी। इसी प्र बांग्लादेश का विश्व प्रसिद्ध 'सुन्दरवन' भी सागर में विलीन हो जायेगा, जिससे पारिस्थितिकी दलदली तन्त्र नष्ट हो जायेगा। प्राय भारत को भी इससे खतरा उत्पन्न हो सकता है।

जलवायु प्राकृतिक तत्त्व के रूप में एक जटिल संरचना रखती है, जो वायुमण्डल के साथ ही महासागर, हिम, भूमि, नदि झीलें, पर्वत आदि से अन्तर्सम्बन्धित है। इनकी अन्त:क्रिया से उत्पन्न परिवर्तन से वर्तमान वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं पर आघ करती है। जलवायु संरचना में परिवर्तन अकाल के रूप में भी परिलक्षित होता है। अमेरिकी पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के एक अध्यय के अनुसार सन् 2060 तक दुनिया का चावल, गेहूँ तथा अन्य खाद्यान्नों का उत्पादन 1.2 से 7.6 प्रतिशत तक कम हो जायेगा। तापमा वृद्धि से विश्व जल संकट को भी गति मिलेगी।

विश्वव्यापी तापन से हिमालय के हिमनद (Glaciers) हिम झीलों में परिवर्तित हो रहे हैं। ये झीलें प्रतिदिन चौड़ी होती जा रह हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका 'न्यू साइंटिस्ट' के अनुसार सन् 2025 तक हिमालय के सभी हिमनद नष्ट हो जायेंगे जिसके दौरान विकरा बाढ़ की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है, जिसका प्रभाव घाटी के आसपास पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों पर पड़ेगा। नई खोज से पता चलता है कि पृथ्वी के गर्म होने के साथ-साथ उत्तर की ओर ग्रीनलैण्ड के हिमनद बड़ी भयावह गति से पिघल रहे है अंटार्कटिका में रॉस सागर (Rose Sea) के विशाल हिमखंडों के अपने मूल स्थानों से अलग हो जाने के कारण भोजन के अभा में हजारों पैंग्विन भूख और थकान से मर रहे हैं।

'द न्यूजीलैंड हेराल्ड टाइम्स' ने खबर दी है कि विश्व में 'एडेली पैंग्विन' के सबसे बड़े निवास स्थानों में से एक *केप क्रोजिय* को हिमखंडों ने घेर लिया है, जिसके कारण लगभग एक लाख 30 हजार एडेली पैंग्विन के जीवन को खतरा पैदा हो गया है। प ने न्यूजीलैंड के अंटार्कटिका विज्ञान प्रमुख डीन पेटरसन के हवाले से कहा कि खाद्य पदार्थों के स्रोत से अपने निवास स्थलों तक क रास्ता ढूँढने में असफल होने के कारण पैंग्विन के नवजात बच्चे भूख से मर रहे हैं। यह स्थिति रॉस हिम आवरण से मार्च, 200 में 37 किलोमीटर चौड़े और 87 किलोमीटर लम्बे दो विशाल हिमखंडों और अन्य 18.5 किलोमीटर चौड़े तथा 55 किलोमीटर लम् हिमखण्डों के यहाँ आने से उत्पन्न हुई है। इन हिमखण्डों के कारण रॉस समुद्र क्षेत्र और खुले समुद्र में अवरोध उत्पन्न हो गया है

1992 में रियो शहर में पृथ्वी सम्मेलन में 160 देशों ने विश्व की जलवायु परिवर्तन पर हस्ताक्षर किये तथा दिसम्बर 199 में जापान में हुए **क्योटो सम्मेलन** में विश्व के कई देशों ने कार्बन डाई आक्साइड के स्तर को कम करने के लिए सहमत हुए इन 160 देशों के अतिरिक्त 300 गैर सरकारी संगठनों ने भाग लिया था। सन् 2002 में जोहान्सबर्ग में भी इन पूर्व के समझौतों की मा की पुनरावृत्ति गई जबकि इस दिशा में कोई प्रभावी निर्णय नहीं लिया गया।

वर्तमान में ग्लोबल वार्मिंग की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। अब तक इस बारे में शोध कर रहे 'जलवा परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल' (आईपीसीसी) की चार रिपोर्ट प्रकाशित हुईं हैं, जिनमें निरन्तर इस ओर संकेत किया जा रहा है कि धरती का तापमान बढ़ रहा है। 2 फरवरी, 2007 को साइंस पत्रिका में आईपीसीसी की चौथी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। इसमें इस तथ्य का सम्पूर्ण खुलासा किया गया कि निरन्तर बढ़ रहे धरती के तापमान के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है। दुनिया में इस रिपोर्ट

को अधिक मान्यता मिली है, और अब आमजन इस संकट को महसूस भी कर रहा है। रिपोर्ट के अनुसार आने वाले दशकों में उच्च अक्षांशों (वह क्षेत्र जहाँ मौसम खासा ठण्डा रहता है) में वर्षा की मात्रा बढ़ेगी, जबकि वर्तमान की अपेक्षा निम्न अक्षांशों (वह क्षेत्र जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है) में वर्षा में कमी आएगी। गर्म रातें बढ़ेंगी तथा ठण्डी रातें घटेंगी। सम्पूर्ण विश्व में तापमान बढ़ने की सर्वाधिक दर आर्कटिक क्षेत्र में है। शुष्क क्षेत्रों में सूखे की आवृत्ति बढ़ेगी। हिमनद पिघलना निरन्तर बढ़ेगा। 11 नवम्बर, 2013 को जारी IPCC की **पाँचवीं रिपोर्ट** में यह वैज्ञानिक दृष्टि से स्पष्टतया स्वीकार कर लिया गया है कि जलवायु परिवर्तन हो रहा है तथा 1950 के बाद हुए पुरा जलवायु अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि आगामी जलवायु परिवर्तन तेजी से होंगे।

ग्लोबल वार्मिंग पर शोधरत संगठनों एवं संस्थानों के आंकड़े इसकी भयावहता के गवाह हैं। वास्तव में दुनिया में तापमान बढ़ने की पृष्ठभूमि तो औद्योगिक क्रान्ति के बाद से कोयला, पेट्रोलियम आदि जीवाश्मीय ईंधन के तीव्र उपभोग से ही बन गई थी, जिनसे वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। पृथ्वी के धरातल का तापमान पूर्व में भी बढ़ता-घटता रहा है, लेकिन पूर्व में मानवीय हस्तक्षेप शून्य रहा, जिससे तापमान संतुलित होता रहा। मगर आज स्थिति बदल गई है। अब हर कहीं मानवीय गतिविधियों से इसमें तेजी आ रही है। आज सम्पूर्ण पृथ्वी पर वैज्ञानिकों ने ऐसे बीस स्थानों का पता लगाया है, जहाँ तापमान बढ़ने से सम्पूर्ण जीव जगत संकट में है। इन्हें ग्लोबल वार्मिंग से ज्वलंत क्षेत्र कहा जाता है। आर्कटिक, अंटार्कटिका, हिमालय, रॉकीज, अलास्का व ग्रीनलैण्ड ऐसे ही ज्वलंत क्षेत्र हैं। निरन्तर बढ़ रहे तापमान का सबसे गहरा असर समुद्र तटीय क्षेत्रों में रह रहे लोगों पर होगा। दुनिया के अनेक बड़े शहरों में डूबने का खतरा पैदा हो गया है। इनमें मुंबई, लंदन, न्यूयार्क, टोक्यो, शंघाई, ढाका व जकार्ता जैसे शहर शामिल हैं।

(2) हरित गृह प्रभाव (Green House Effect)

मानव की प्रकृति विरोधी नीतियों एवं कार्यों के कारण सन्तुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा गये हैं, इसी संदर्भ में पृथ्वी के वायुमण्डल में कुछ विशेष गैसों की मात्रा इस सीमा तक बढ़ गई कि धरती की उष्मा या गर्मी बाहर नहीं निकल पा रही है, इससे उत्पन्न प्रभाव को हरित गृह प्रभाव कहते हैं। **आक्सफोर्ड शब्दकोश** के अनुसार–

"वायुमण्डल में मानव जनित कार्बन डाई आक्साइड के आवरण प्रभाव (Blanketting Effect) के कारण पृथ्वी की सतह की प्रगामी तापन (Progressive Warming) को हरित गृह प्रभाव कहते हैं।"

हरित गृह प्रभाव उत्पन्न करने वाली गैसों में कार्बन डाइ आक्साइड, जलवाष्प, मीथेन और नाइट्रस आक्साइड प्रमुख हैं। पृथ्वी से बाहर जाने वाली दीर्घ तरंगों को अवशोषित करने के कारण हैलोजनित गैसों तथा क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) भी हरित गृह गैसों की श्रेणी में आती हैं। इनमें सबसे अधिक योगदान कार्बन-डाई-ऑक्साइड (CO_2) का रहता है।

मनुष्य द्वारा विभिन्न उद्देश्यों के लिए जीवाश्मीय ईंधन (Fossil fuel-coal and Petroleum) दहन से (CO_2) का वायुमण्डल में विमोचन होता है। इनके अतिरिक्त विद्युत उत्पादन केन्द्रों, उद्योगों में कोयला एवं खनिज तेल के दहन से चिमनियों (मानव ज्वालामुखी) से निःसृत होने, यातायात के साधनों में दहन होने वाले ईंधन से तथा घरेलू उपयोग के दौरान लकड़ियों के दहन से (CO_2) गैस का भारी मात्रा में विमोचन होता है। वन विनाश द्वारा भी CO_2 की मात्रा बढ़ती है। सन् 1750 के बाद CO_2 की मात्रा 30 प्रतिशत बढ़ी है, जिससे 65 प्रतिशत हरित गृह प्रभाव बढ़ा है। 1965 में वातावरण में CO_2 की मात्रा 320 प्रतिशत (भाग प्रति दस लाख) थी, बढ़कर 1990 में 360 पीपीएम हो गई। वर्तमान समय में वायुमण्डल में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की सान्द्रता लगभग 380 पी.पी.एम. है। अर्थात् विगत एक दशक में CO_2 की वृद्धि दर लगभग 0.5 प्रतिशत वार्षिक रही है। इसी आधार पर वैज्ञानिकों का अनुमान है कि सन् 2050 तक वातावरण में CO_2 की मात्रा दुगुनी हो जायेगी।

कार्बन डाई आक्साइड (CO_2) वास्तव में वातावरण का एक घटक है। वायुमण्डल के निचले भाग में यह प्रदूषक तत्त्व नहीं है, किन्तु सान्द्रण (Concentration) अधिक होने से उष्मा सन्तुलन में परिवर्तन होने से जलवायु परिवर्तित होने की सम्भावना रहती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के दौरान तापमान में विश्वव्यापी परिवर्तन से जीव-जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। तापमान में वृद्धि होने पर वर्षा तथा मृदा में नमी की मात्रा में कमी होगी, जिससे कृषि प्रभावित होगी। कई स्थान सूखे की चपेट में आयेंगे। वर्षा में कमी एवं तापमान वृद्धि से वन क्षेत्र भी घटेगा। वनावरण में ह्रास के परिणामस्वरूप जैव विविधता का भी ह्रास

होगा। तापमान बढ़ने के कारण बर्फ पिघलने से सागरीय तट जलमग्न हो जायेंगे। एक अनुमान के अनुसार हरित गृह प्रभाव के कारण तापमान में वृद्धि होने से सागर तल में सन् 2050 तक एक मीटर की वृद्धि हो जायेगी, जिस कारण मिस्र के भूमध्य सागरीय तटवर्ती क्षेत्र का 15 प्रतिशत कृषि क्षेत्र नष्ट हो जायेगा। यदि मानव जनित CO_2 का वातावरण में निरन्तर सान्द्रण होगा तो महासागरीय भागों को CO_2 का अधिकाधिक अवशोषण (Absorption) करना पड़ेगा। यदि महासागरीय जल में CO_2 का अवशोषण तथा विघटन (Decomposition) सामान्य स्तर पर से अधिक होगा तो अम्लता बढ़ जायेगी, जिससे पारिस्थितिक तन्त्र की उत्पादकता घटेगी। हरित गृह गैसों के कारण समतापमण्डलीय ओजोन में अल्पता आयेगी जिस कारण तापमान में वृद्धि होगी।

नूतन वर्षों में वैज्ञानिकों ने एक नवीन हरित गृह गैस की खोज की है, जिसे ट्राइफ्लोरी मिथाइल (F3) कहते है। यह CO_2 की तुलना में 100 वर्षों की समयावधि तक अवरक्त किरणों का अवशोषण करने की लगभग 20,000 गुणा अधिक क्षमता रखती है।

विश्व में हरितग्रह गैसों के उत्सर्जन की प्रवृत्ति

1945 से जीएचजी उत्सर्जन में तेज वृद्धि हुई है। विश्व संसाधन संस्थान 2005 में विश्व ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के अद्यतन वर्ष अध्ययन के मुताबिक 2005 में कुल उत्सर्जित जीएचजी गैसों 44,153 मिलियन मीट्रिक टन कार्बन डाई-ऑक्साइड के तुल्य थी। यही वह नवीनतम तथा अद्यतन वर्ष है जिसके सभी गैस तथा सभी देशों के व्यापक उत्सर्जन के आंकड़े उपलब्ध हैं। 2000 से 2005 के दरम्यान विश्व में कुल 12.7% जीएचजी गैसों का उत्सर्जन हुआ था जो कि 2005 में कुल जीएचजी उत्सर्जन का 77 फीसदी हिस्सा था। इसके साथ ही मीथेन (15%) और नाइट्रस ऑक्साइड (7%) जैसी गैसें भी थी। 2005 में कुल विश्व जीएचजी उत्सर्जन का 18% हिस्सा उत्तरी अमरीका, 16% चीन और 12% यूरोपीय यूनियन ने उत्सर्जित किया था। इसमें भारत की हिस्सेदारी महज 4% रही थी।

विश्व बैंक डाटाबेस में वर्ष 2008 तक के कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन के आंकड़े हैं। चूंकि कार्बन डाई-ऑक्साइड सर्वाधिक प्रबल जीएचजी है, निरपेक्ष और प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन की दृष्टि से सभी देशों में कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जनों के बारे में 1992 में किए गए विश्लेषण की तुलना में 2008 में किया गया विश्लेषण उचित है। वर्ष 1992 में यूएसए का उत्सर्जन स्तर अन्य देशों के मुकाबले कार्बन डाई-ऑक्साइड के 4876 मिमी. टन के उच्चतम स्तर पर था, जहाँ 2008 में चीन का उच्चतम उत्सर्जन 7031 मिलियन मीट्रिक टन कार्बन डाई-ऑक्साइड था तथा अमेरिका 5461मिलियन मीट्रिक टन कार्बन डाई-ऑक्साइड के साथ दूसरे स्थान पर था। भारत का कुल उत्सर्जन स्तर 1742 मिलियन मीट्रिक टन कार्बन-डाई-ऑक्साइड था। रूस, जापान, जर्मनी और कनाडा आदि देश भी इसी के आस-पास थे।

प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन जो कि एक अलग ही तस्वीर पेश करता है, ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। 1992 और 2008 दोनों वर्षों में कतर का सर्वाधिक प्रति व्यक्ति उत्सर्जन क्रमशः 54.89 और 49.05 CO_2 टन था। 2008 में त्रिनिदाद और टोबेगो (37.39 CO_2 टन), कुवैत (30.11 CO_2 टन), ब्रुनेई दारुसलेम (27.53 CO_2 टन) और संयुक्त अरब अमीरात (24.98 CO_2 टन) का अनुगमन किया। उसके बाद जबकि चीन और भारत जैसे देश क्रमशः (5.30 CO_2 टन) और (1.52 CO_2 टन) के साथ 68वें तथा 122वें स्थान पर हैं, आस्ट्रेलिया 13वें स्थान और जर्मनी 31वें स्थान, सर्वाधिक प्रति व्यक्ति सर्वाधिक CO_2 उत्सर्जन वाले देश हैं जो कि उनकी समग्र उत्सर्जन में परिलक्षित होता है।

एनेक्स-1 देशों, गैर-एनेक्स-1 देशों तथा भारत का उत्सर्जन विश्लेषण

यूएनएफसीसी ने सभी देशों को एनेक्स-1 तथा गैर एनेक्स-1 देशों में वर्गीकृत किया है। हालांकि सुस्पष्ट रूप से यह एनेक्स-1 अर्थात् विकसित और गैर एनेक्स-1 अर्थात् विकासशील देशों का वर्गीकरण नहीं है। मोटे तौर पर जलवायु परिवर्तन की शब्दावली में कहें तो एनेक्स-1 पार्टियों का आशय उन औद्योगिक देशों से है जो जीएचजी उत्सर्जन को रोकने के लिए स्वयं तत्पर हुए हैं जबकि गैर एनेक्स-1 देशों में वे विकासशील या इसी प्रकार अपेक्षतया कम विकासशील देश (एलडीसी) है जिन्होंने उत्सर्जन घटाने की कोई बाध्यकारिता नहीं दर्शायी है। क्योटो प्रोटोकाल के तहत 37 देशों ने स्वैच्छया जीएचजी उत्सर्जन नामतः कार्बनडाई-ऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O), सल्फर हेक्साफ्लोराइड (SF_6), हाइड्रोफ्लोरो कार्बन (HFC_5) और

परफ्लर कार्बनों (PFC_5) के उत्सर्जन घटाने की प्रतिबद्धता जाहिर की है। विचार-विमर्श में सभी एनेक्स-1 पार्टियाँ (अमेरिका सहित) 2008-2012 की अवधि के लिए 5.2% वार्षिक की दर से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को सामूहिक रूप से घटाने के लिए तैयार हो गए हैं। यह घटोत्तरी 1990 के मुकाबले उनके वार्षिक उत्सर्जन के सापेक्ष होगी। चूंकि अमेरीका ने प्रोटोकाल का अनुसमर्थन नहीं किया है, अत: एनेक्स-1 क्योटो देशों की सामूहिक उत्सर्जन घटोत्तरी 5.2% सालाना से घटकर आधार वर्ष से 4.2% तक सीमित रह गई है।

भारत और ग्रीन हाउस गैसें (GHG)

भारतीय जलवायु परिवर्तन मूल्यांकन नेटवर्क (आईएनसीसीए) द्वारा मई 2010 में किए गए मूल्यांकन भारत के लिए उपलब्ध अद्यतन आंकड़े हैं। मूल्यांकन के अहम् परिमाण यह है कि वर्ष 2007 में भारत में कुल निवल जीएचजी उत्सर्जन 1727.71 मिलियन टन CO_2 समसंयोजन (ई. क्यू.) हुआ, जिसमें से कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन 1221.76 मिलियन टन; मिथेन 20.56 मिलियन टन तथा नाइट्रस डाई-ऑक्साइड 0.24 मिलियन टन था। वर्ष 1994 में, भारत का कुल निवल जीएचजी उत्सर्जन CO_2 ई. क्यू. 1228.54 था। यह 1994 से 2007 के दौरान 2.9% की संयोजित वार्षिक वृद्धि दर को दर्शाता है। ऊर्जा, उद्योग, कृषि तथा अपशिष्ट क्षेत्रों से 2007 में हुए जीएचजी उत्सर्जन निवल CO_2 ई.क्यू. उत्सर्जनों का क्रमश: 58%, 22%, 17% तथा 3% गठित करते हैं। भूमि उपयोग, भूमि उपयोग परिवर्तन तथा वानिकी (एलयूएलयूसीएफ) सहित भारत के प्रति व्यक्ति CO_2 ई.क्यू. उत्सर्जन वर्ष 2007 में 1.5 टन प्रति व्यक्ति थे।

असमानता

एच.डी.आर. 2011 के अनुसार, भारत में 2000-11 अवधि में आय की दृष्टि से असमानता का जीनी गुणांक 36.8 था। भारत का जीनी सूचकांक दक्षिण अफ्रीका (57.8), ब्राजील (53.9), थाइलैंड (53.6), तुर्की (39.6), चीन (41.5), श्रीलंका (40.3), मलेशया (46.2), वियतनाम (37.6) जैसे तुलनीय देशों के जीनी सूचकांक ही नहीं, यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमरीका (40.8), हांगकांग (43.4), अर्जेन्टीना (45.8), इजराइल (39.2) और बुल्गारिया (45.3) जिनका अन्यथा भी मानव विकास में बहुत ऊँचा स्थान है, के जीनी सूचकांकों से भी अधिक अनुकूल था।

(3) जलवायु में परिवर्तन (Climate Change)

प्रकृति के साथ मनमानी छेड़छाड़ से सदियों से सन्तुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा गये हैं। तीव्र औद्योगिकरण एवं वाहनों के कारण धरती दिन-प्रतिदिन गरमाती जा रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है। सन् 1988 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा विश्व मौसम विज्ञानी संगठन ने वैज्ञानिकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय दल-*इंटर गवर्नमेंटल पैनल आन क्लाइमेट चेंज(IPCC)* का गठन किया है, जिसके शोध में पाया गया है कि पिछली सदी के दौरान औसत तापमान 0.3 से 0.6 डिग्री सैल्सियस की वृद्धि होने मात्र से ही जलवायु डगमगा गई है और खतरनाक नतीजे सामने आने लगे हैं। इस दौरान महासागरों का जल स्तर 10.25 सेंटीमीटर ऊँचा हो गया है, जिसमें 2.7 सेंटीमीटर की बढ़ोत्तरी बढ़े हुए तापमान के कारण पानी के फैलाव से हुई है। **जून 2016** को लिये गये उपग्रह चित्र से पता चला है कि आर्कटिक सागर में केवल 11.1 मिलियन वर्ग किमी. क्षेत्र ही हिमावरित बचा है जबकि ये विगत 30 वर्ष पूर्व 12.7 मिलियन वर्ग किमी. था। इसके पिघलने से गर्म एवं ठण्डी धाराओं का सन्तुलन बिगड़ेगा तथा सागरीय पारिस्थितिक तंत्र असन्तुलित होगा।

जलवायु एक जटिल प्रणाली है, इसमें परिवर्तन आने से वायुमण्डल के साथ ही महासागर, बर्फ, भूमि, नदियाँ, झीलें तथा पर्वत और भूजल भी प्रभावित होते हैं। इन कारकों के परिवर्तन से पृथ्वी पर पायी जाने वाली वनस्पति और जीव-जन्तुओं पर भी प्रभाव पड़ता है। सागर के वर्षा वन कहलाये जाने वाले मूंगा की चट्टानों पर पायी जाने वाली रंग-बिरंगी वनस्पतियाँ प्रभावित हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन से सूखा पड़ेगा जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा। जल की उपलब्धता भी घटेगी, क्योंकि वर्तमान समय में कुल स्वच्छ पानी का 50 प्रतिशत मानवीय उपयोग में लाया जा रहा है। अत: कुवैत, जोर्डन, इस्राइल, रवांडा तथा सोमालिया जैसे जलाभाव वाले देशों में घातक जल संकट उत्पन्न होगा। अमेरिका सुरक्षा एजेंसी ने अनुमान लगाया है कि कार्बन डाई आक्साइड की

मात्रा दुगुनी होने से उत्पन्न गर्मी के कारण कैलिफोर्निया में पानी की वार्षिक आपूर्ति में सात से सोलह प्रतिशत की कमी आ सकती है। जलवायु परिवर्तन से कृषि के साथ ही वनों की प्राकृतिक संरचना भी बदल सकती है। सूक्ष्म वनस्पतियों से लेकर विशाल वृक्षों तक का तापमान और नमी का एक विशेष सीमा में अनुकूलन रहता है। इसमें परिवर्तन होने से ये वनस्पतियाँ या तो अपना स्थान परिवर्तित कर लेंगी या सदा के लिए विलुप्त हो जायेंगी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बढ़ती जनसंख्या एवं शहरीकरण के कारण इन्हें दूसरा रास्ता ही अपनाना होगा। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन से विश्व के एक-तिहाई वनों को खतरा है। उच्च तापमान से वनाग्नि की घटनायें भी बढ़ रही हैं। वनाग्नि से वायुमण्डल की कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ सकती है।

पृथ्वी की जलवायु परिवर्तित होने से कई संक्रामक रोगों का प्रकोप भी तीव्र गति से बढ़ रहा है। ठण्डे देशों में गर्म-लू (Loo) जैसी हवायें चलने लगी हैं। सन् 1995 में जुलाई माह में शिकागो में एक सप्ताह तक गर्म हवाएँ (लू) चली, जिससे 50 लोग मारे गये। जलवायु परिवर्तन एवं मलेरिया में अनुकूल सम्बन्ध है, क्योंकि मलेरिया फैलाने वाले मच्छर और मलेरिया परजीवों दोनों को ही ठण्डी जलवायु रास नहीं आती है, बढ़ते तापमान में ये स्वतंत्र कार्य करते हुए अनेक संक्रामक रोग फैलाते हैं। रवांडा में सन् 1960 में एक डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से मलेरिया में दोगुनी वृद्धि हो गई। कुख्यात डेंगू बुखार भी तापमान वृद्धि से ही होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन के कारण पुन: उत्पन्न होने वाले संक्रामक रोगों का सर्वाधिक कहर विकासशील देशों को झेलना पड़ेगा। स्टेन फोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक स्टीफेन श्नाइडर ने अपनी चर्चित पुस्तक "Laboratory Earth" में बताया है कि जलवायु परिवर्तन का जो चक्र चल पड़ा है, उसे अब एकदम रोक पाना नामुमकिन है परन्तु सावधानियाँ बरतकर इसकी गति अवश्य कम की जा सकती है। अत: प्रकृति की ओर वापसी का मूल मंत्र अपनाना होगा।

बॉक्स-3.1 : जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से अनिश्चितता की स्थिति में आने वाले मुख्य क्षेत्र

- नदियों एवं झीलों में जल की अनुक्रिया।
- उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की बारम्बारता।
- स्थायी हिम (Permafrost) के पिघलने का प्रतिरूप हिमनद।
- हिम टोपियों की अनुक्रिया।
- सागर तल में उत्थान की सीमा।
- सागर तल के उत्थान से पुलिन क्षेत्रों (Beaches) की अनुक्रिया।
- प्रवाल भित्तियों, डेल्टा तथा आर्द्र भूमि की स्थिति।

कृषि पर संकट

भारतीय मानसून की प्रकृति बदल रही है। गत वर्ष चेरापूंजी क्षेत्र में औसत से कम वर्षा हुई और पश्चिमी भारत (विशेषकर बाड़मेर) में वर्षा की मात्रा औसत से अधिक रही। इसी प्रकार शीतकाल में आने वाले पश्चिमी विक्षोभ भी इस स्थिति से प्रभावित रहे हैं। जलवायुवीय चरम घटनाएँ वैश्विक तंत्र का हिस्सा है, इसलिए तापमान में विश्वस्तरीय बढ़ोतरी का प्रभाव इन पर पड़ता है। चूंकि भारत की इन पर निर्भरता अधिक है इसलिए थोड़े से परिवर्तन का प्रभाव भी तुरन्त दिखाई दे जाता है। आज पृथ्वी का तापमान बढ़कर पिछले दस लाख वर्षों के इतिहास में सबसे अधिक होने के करीब है, जिसका सर्वाधिक प्रभाव प्रशानत महासागर पर पड़ेगा और अलनीनो जैसी घटनाएँ यहीं बनती हैं जो भारतीय मानसून को सीधे-सीधे प्रभावित करेंगी।

मानसून का प्रभाव सीधे तौर पर भारतीय कृषि पर पड़ेगा। ग्लोबल वार्मिंग के कृषि पर अप्रत्यक्ष प्रभावों में मानसूनी बदलाव शामिल है, जबकि प्रत्यक्ष प्रभावों में बढ़ते तापमान से फसलों की उत्पादकता घटना एवं रोगग्रस्तता में वृद्धि होना शामिल है। उच्च तापमान से चावल एवं गेहूँ की उपज घटेगी। गुजरात, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक की तटीय पेटी में कृषि अधिक प्रभावित होगी। व्यावहारिक दृष्टि से बदलते मौसम के कारण कृषि फसलों की उत्पादकता में कमी हमने महसूस भी कर ली है। बढ़ते तापमान का प्रभाव वर्तमान में चल रही अनेक योजनाओं पर भी पड़ेगा, जिनमें नदी घाटी योजनाएँ एवं नदी जोड़ने की योजनाएँ प्रमुख हैं। भारत में अनेक बहुउद्देश्यीय योजनाएँ तो आगमी कई वर्षों में जाकर पूर्ण होंगी और तापमान में वृद्धि के कारण जल संकट के चलते इनकी उपयोगिता पर भी प्रश्नचिह्न लगा सकता है। इसी तरह भारत के लिए नदी जोड़ने की महत्त्वाकांक्षी योजना भी बढ़ते तापमान से संकट में है।

तापमान बढ़ने जैसी वैश्विक घटनाएँ यकायक महसूस न होकर लम्बे समय में अपने परिणाम छोड़ती हैं। ग्लोबल वार्मिंग के परिणामों से आमजन वाकिफ हो रहा है। इसके दुष्परिणाम भयावह ही होंगे, क्योंकि इसका सीधा प्रभाव कृषि तंत्र पर पड़ेगा, सागर

तल में होने वाली वृद्धि से बांग्लादेश जैसे देश से भारत में आने वाले शरणार्थियों की भी समस्या बढ़ेगी। भारत के द्वीपों का पारिस्थितिकी तंत्र भी संकट में होगा तथा आकस्मिक बाढ़ एवं निरन्तर सूखों से मानव जगत सहित सम्पूर्ण जैव विविधता पर संकट आएगा।

जलवायु परिवर्तन एवं खाद्य सुरक्षा

खाद्य सुरक्षा को बनाए रखने के क्षेत्र में नई चुनौतियों और अवसरों के साथ 21वीं सदी की शुरुआत हो चुकी है। प्रमुख चुनौतियाँ हैं–जलवायु परिवर्तन, पेट्रोलियम आधारित ऊर्जा की बढ़ती कीमतों के कारण ईंधन उत्पादन के लिए खेतों का बदलता स्वरूप, कृषि की प्रगति के लिए आवश्यक इकोलॉजी को होती क्षति और निर्बाध रूप से पनपते कीटनाशक। सोभाग्य से विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र, विशेष रूप से बायोटेक्नोलॉजी, सूचना और संचार तथा अंतरिक्ष तकनीक के क्षेत्र में हुई नई खोजों ने, इकोलॉजी को किसी प्रकार का नुकसान पहुँचाए बिना एक लम्बी हरित क्रान्ति के युग की शुरुआत करने के नए अवसर उपलब्ध कराए हैं।

जहाँ तक जलवायु परिवर्तन का सवाल है, वहाँ बढ़ता तापमान, घटती वर्षा के कारण बढ़ती हुई सूखे की मात्रा व बाढ़ की बढ़ती घटनाएँ और अण्टार्कटिक तथा आर्कटिक क्षेत्रों में बर्फ की चादरों के पिघलने से चढ़ता समुद्र स्तर जैसे कुछ चिंताजनक पहलू हैं। वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा ने विशेष रूप से बागवानी में कुछ अवसर उपलबध कराए हैं। इन अवसरों और चुनौतियों का सामना करने के लिए विशेष रूप से शोध की शुरुआत करनी होगी। उचित डोनर्स से बाढ़, सूखा और समुद्री लवणता को सहन करने में समर्थ जीनों को परिवर्तित करना होगा। धान जलवायु परिवर्तन वाले क्षेत्रों की मुख्य फसल बन सकता है, क्योंकि विभिन्न जलवायु की दशाओं में बढ़ने की क्षमता इसमें अधिक है। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में तैरते धान की फसलों की पैदावार हो सकती है। वे विषाणु जो निर्बाध गति से फैलते हैं जैसे एवियन एन्फ्लुएंजा के वायरस एच5एन1, उनकी रोकथाम के लिए हमें अपनी निगरानी और चेतावनी प्रणाली को मजबूत बनाने की जरूरत है। प्रतिरोधी जीनों को खोजने के लिए जांच-पड़ताल की सुविधाओं को बढ़ाने की जरूरत है।

नई हरित क्रान्ति के मानकीकरण के लिए जैविक और हरित कृषि के दो रास्तों को अपनाने की जरूरत है। सामान्यत: जैविक कृषि में खनिज उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों और जेनेटिकली मोडीफाइड फसलों की प्रजातियों का उपयोग नहीं किया जाता। हरित कृषि में, समाकलित कीट प्रबन्धन, पौष्टिक तत्त्वों और समुचित फसल की प्रजातियों का फसल उत्पादन में उपयोग किया जाता है। जैविक कृषि पद्धति को नई जेनेटिक्स के साथ फसल-पशुधन को शामिल करने की जरूरत है। पर इसके लिए वैश्विक बायोटेक्नोलॉजी विनियामक व्यवस्था का सहमत होना आवश्यक है और जिसका आधार पर्यावरण की सुरक्षा, उपभोक्ता का स्वास्थ्य तथा देश की बायो सुरक्षा होनी चाहिए। बायोटेक्नोलॉजी की विधाओं जैसे सेल, टिश्यू संवर्द्धन और डीएनए टेक्नोलॉजी की मदद लिए बगैर वर्तमान में उभर रही चुनौतियों का सामना करना कठिन है।

एक दूसरा क्षेत्र जिस पर बहुत ज्यादा ध्यान दिए जाने की जरूरत है वह है तकनीक के विकास से लेकर उसके प्रचार-प्रसार तक महिलाओं को मुख्य धारा में शामिल करना। यहाँ विज्ञान में महिलाएँ और महिलाओं के लिए विज्ञान आन्दोलन शुरू करने की बड़ी संभावना है।

(4) हिम का पिघलना (Ice Melting)

जलवायु परिवर्तन के तहत तापमान बढ़ने के कारण संसार के सबसे बड़े स्वच्छ जलीय भाग जो, बर्फ के रूप में पाए जाते है, पिघल रहे हैं। नूतन वर्षों में किये गये शोध के उपरान्त वैज्ञानिकों ने बताया है कि ग्रीनलैण्ड एवं अण्टार्कटिका के हिमावरण में ह्रास हो रहा है। मार्च, 2002 में लन्दन के वैज्ञानिकों ने सुदूर संवेदन उपग्रह से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर बताया है कि अण्टार्कटिका के पूर्वी भाग से जुड़ा लार्सन-बी हिमनद टूट गया है। 1250 वर्ग मील क्षेत्रफल एवं 650 फुट मोटाई वाली बर्फ की इस चट्टान के टूटने को दुनिया के लिए खतरा बताया जा रहा है। लार्सन-बी हिमनद 1500 वर्ष पुराना है। मार्च, 2002 में मात्र एक माह में ही इसके टूटकर बिखर जाने की घटना को वैज्ञानिकों ने गहनता से लिया है तथा इसके टूटने को विश्व तापमान में वृद्धि का परिणाम बताया है। ब्रिटिश अंटार्कटिका सर्वे ने चार वर्ष पूर्व यहाँ आशंका जताई थी कि प्रायद्वीपीय हिस्से की कुछ बर्फीली चट्टानें तेजी से पिघल रही हैं।

यह भी आश्चर्यजनक तथ्य है कि अण्टार्कटिका के ही अन्य हिस्सों में तापमान घट रहा है, जबकि प्रायद्वीपीय भाग का तापमान तीव्रता से बढ़ रहा है, जिस पर शोध कार्य जारी है। अण्टार्कटिका के विभिन्न भागों में कहीं तापमान के बढ़ने तथा कहीं घटने के कारण अनेक वैज्ञानिक इस संशय में भी पड़ जाते हैं कि तापमान बढ़ रहा है या घट रहा है। इसी सन्दर्भ में 1 मई, 2002 को गोवा में स्थित नेशनल सेन्टर फॉर अण्टार्कटिका एवं ओशन रिसर्च के निर्देशक ने विश्व तापन की परिवर्तनशीलता के सन्दर्भ में कहा कि दक्षिणी ध्रुव पर बर्फ पिघल नहीं रही, वरन् बढ़ रही है जबकि वास्तव में विश्व तापमान में निरन्तर वृद्धि हो रही है। यह संशय केवल इसके प्रभाव की स्थानिक भिन्नता का परिणाम है।

अण्टार्कटिका तथा आर्कटिका क्षेत्र के अतिरिक्त उच्च पर्वतों पर स्थित विशाल हिम राशि को भी पिघलने के संकेत मिले हैं। भारत की प्रमुख नदी गंगा का मुख्य जल स्रोत गंगोत्री हिमनद भी तीव्रता से पीछे हट रहा है। इस प्रकार यदि विश्व की हिम पिघलती रही तो सागर तल में भी उत्थान होगा। यह आशंका IPCC ने एक दशक पूर्व जताई थी तथा बताया था कि तल में 30–110 सेमी. तक उत्थान होगा, जिससे सागर तटीय कृषि भूमि के नष्ट होने के अतिरिक्त दलदली (Mangrov) भूमि एवं प्रवाल भित्तियों आदि के प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र नष्ट हो जायेंगे।

हिमालय के हिमनद तेजी से पिघल रहे हैं। भारतीय हिमालय क्षेत्र में पाँच हजार से भी अधिक हिमनद हैं, जिनसे अनेक बड़ी नदियों का उद्गम होता है। आज हिमालय में स्थित दो-तिहाई हिमनद पिघलकर पीछे हट रहे हें, जिनमें गंगोत्री एवं यमुनोत्री हिमनद भी शामिल हैं। हाल में वैज्ञानिकों ने एक मॉडल विकसित किया है, जो गंगा, यमुना, सिंधु तथा ब्रह्मपुत्र आदि हिमालयी नदियों पर हिमनदों के पिघलने के प्रभाव को दर्शाता है। इसमें आगामी सौ वर्षों तक की भविष्यवाणी की गई है, जिसमें प्रत्येक दशक की भिन्न-भिन्न स्थिति स्पष्ट की गई है। प्रारम्भ में हिमनदों के पिघलने से भारतीय उपमहाद्वीप की इन बड़ी नदियों में बाढ़ आएगी, क्योंकि ऐसे में नदियों के जल का आयतन बढ़ जाएगा, लेकिन जलीय मात्रा बढ़ने के अनुपात में हिमनदों का आयतन घट जाएगा और धीरे-धीरे इन नदियों के स्रोत सूख जाएँगे।

हिमालय के हिमनद जिस गति से पीछे हट रहे हैं, उसके अनुसार यह आगमी 40 वर्षों में विलुप्त हो जाएँगे। हाल में प्राप्त उपग्रह के आंकड़ों से स्पष्ट हुआ है कि पश्चिमी हिमालय में 10% एवं पूर्वी हिमालय में 30% हिमनद कम हो गए हैं। जब तक हिमनद में हिम के पिघलने तथा संचय (जमाव) में संतुलन रहता है, तब तक हिमनद का अस्तित्व पूर्ववत् बना रहता है। लेकिन बढ़ते तापमान ने हिम संचय में कमी कर दी है और पिघलने की दर बढ़ा दी है, लिहाजा इनके अस्तित्व पर संकट मंडराने लगा है। हिमालय में गंगोत्री हिमनद के पिघलने (पीछे हटने) की दर 98 फीट प्रति वर्ष हो गई है तथा इस आधार पर कहा जा सकता है कि वर्ष 2035 तक पूर्वी हिमालय के समस्त हिमनद विलुप्त हो जाएँगे। सोचिए, अगर ऐसा हुआ तो हम पर इसका कितना गहरा असर होगा। सम्पूर्ण हिमालय प्रदेश का औसत तापमान विगत चार दशकों में 1.8 डिग्री फा. बढ़ गया है। इस तरह भारतीय उपमहाद्वीप में तापमान के बढ़ने से एक बार तो प्रमुख बड़ी नदियों में बाढ़ आएगी। वर्तमान शताब्दी के अन्तिम दशकों में प्रतिवर्ष भारत सहित दुनिया की लगभग 10 करोड़ आबादी बाढ़ से प्रभावित होगी। ताजा जानकारी के अनुसार भारत, बांग्लादेश, चीन, वियतनाम तथा इण्डोनेशिया आदि देशों की तो लगभग आधी से अधिक आबादी ग्लोबल वार्मिंग से आयी बाढ़ का संकट झेलेगी। प्रसद्धि सुंदरबन का 18500 एकड़ वन क्षेत्र डूब की जद में आ जाएगा।

(5) ओजोन क्षयीकरण (Ozone Depletion)

धरती के लिए रक्षा कवच की तरह काम करने वाली ओजोन (O_3) गैस की परत हानिकारक पैराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। ओजोन के ह्रास के लिए क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) गैस उत्तरदायी है। CFC का आविष्कार संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् 1930-31 में हुआ था। अज्वलनशील, रासायनिक रूप से निष्क्रिय तथा अविषाक्त होने के कारण औद्योगिक रूप से CFC की पहचान एक आदर्श प्रशीतक के रूप में की गई। उस समय CFC को चमत्कारी यौगिक की संज्ञा दी गई थी। प्रशीतक (रेफ्रीजरेटर), वातानुकूलन यंत्रों, इलैक्ट्रोनिक, प्लास्टिक तथा दवा उद्योगों एवं एसोसोल आदि में (CFC) का व्यापक प्रयोग होता है।

बॉक्स-3.2 **ओजोन गैस** (Ozone Gas)

वायुमण्डल में 30 से 60 किलोमीटर की ऊँचाई पर ओजोन गैस की परत पायी जाती है, जिसका निर्माण ऑक्सीजन (O_2) के अणुओं के टूटकर मिलने से होता है। इस ऊँचाई पर तीव्र पैराबैंगनी किरणों के कारण पर्याप्त तापमान मिलता है, जिसके O_2 के अणु (Atoms) टूटकर O + O हो जाते हैं तथा दूसरे से O_2 से मिलकर ओजोन ($O_3 = O_2 + O$) का निर्माण करते हैं। इसका निर्माण 30 से 60 किमी. की ऊँचाई पर पर्याप्त दबाव नहीं मिल पाता है क्योंकि 60 किमी. की ऊँचाई पर पर्याप्त दबाव नहीं मिल पाता है। जो इनके संलयन के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार 30 किमी. से नीचे दबाव तो पर्याप्त मिलता है, लेकिन यहाँ ऑक्सीजन अणुओं के संलयन ($O_3 = O_2 + O$) के लिए आवश्यक तापमान पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता है। अतः इसी कारण 30 किमी. से नीचे तथा 60 किमी. से ऊपर ओजोन गैस नहीं मिलती है। इसकी सर्वाधिक सघनता भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में मिलती है। ध्रुवीय क्षेत्रों में इसकी सघनता कम ऊँचाई पर मिलती है।

प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व मानव कल्याण के लिए होता है, लेकिन जब मानव उससे अनावश्यक छेड़छाड़ करने लगता है तो उसके दुष्परिणाम परिलक्षित होने लगते हैं। ओजोन भी इससे अछूती नहीं है। प्रारम्भिक समय में CFC के कुप्रभावों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, परन्तु सन् 1974 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय (U.S.A.) के शेरवुड शैलेण्ड तथा मेरियो मौबिना ने अपने अनुसंधानों द्वारा बताया कि CFC में विद्यमान क्लोरीन ओजोन के अणुओं के विघटन का कारण बनते हैं। परिणामस्वरूप वायुमण्डलीय ओजोन में तेजी से अल्पता (Depletion) आ रही है, जिसकी पुष्टि जीसेफ फरमन के नेतृत्व में 1985 में अण्टार्कटिका गये ब्रिटिश वैज्ञानिकों के दल ने की तथा ओजोन परत में एक विशाल छेद होने की पुष्टि की गई। लेकिन यह तथ्य वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि ओजोन गैस की परत एक आवरण है तथा इसमें अल्पता आयी है न कि छिद्र हुआ है। ओजोन ह्रास के लिए उतरदायी हरित गृह गैसों का सर्वाधिक उत्पादन अमेरिका (24 प्रतिशत) करता है।

वायुमण्डल में पायी जाने वाली ओजोन की परत सूर्य की पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर उसके दुष्प्रभावों से हमारी रक्षा करती है। सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणें (Ultraviolet Rays) मानव त्वचा पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं, जिस कारण त्वचा कैंसर होने की संभावना रहती है। पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के एक प्रतिवेदन के अनुसार ओजोन की मात्रा में 1 प्रतिशत की कमी होने पर कैंसर से पीड़ित मनुष्यों की संख्या में 2 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रतिवर्ष त्वचा कैंसर से ग्रसित लोगों की संख्या में 4 लाख तक की वृद्धि हो रही है। मनुष्य के अतिरिक्त लगभग 200 पेड़-पौधों की प्रजातियों पर ओजोन का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। ओजोन के प्रभाव से प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) की प्रक्रिया पर भी असर पड़ता है। पौधों की उपापचयी (Metabolic) क्रियायें भी ओजोन को प्रभावित करती हैं। ओजोन की अल्पता से पृथ्वी का तापमान बढ़ेगा (तापमान वृद्धि के दुष्प्रभावों का विवरण पूर्व में दिया जा चुका है।) डॉ. बिल्मार्ट (U.S.A.) के अनुसार सीमा से अधिक पराबैंगनी किरणों के कारण पौधों के डी.एन.ए. के मूल आधार पर परिवर्तन हो जाता है, जिस कारण पौधों में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

ओजोन अल्पता के कारण तापमान में हो रही वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तनों को विश्व पर्यावरण की ज्वलन्त समस्या मानकर वैज्ञानिक समुदाय एवं पर्यावरणविदों ने इसे काफी गंभीरता से लिया है। ओजोन को बचाने के सार्वभौमिक प्रयासों के अन्तर्गत 1985 में **वियना सम्मेलन** तथा 1987 में **मांट्रियल प्रोटोकाल** के रूप में विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते पर सहमति दी गई। सी.एफ.सी. पर समयबद्ध तरीके से नियंत्रण लगाना भी मांट्रियल प्रोटोकाल का मुख्य उद्देश्य था। सी.एफ.सी. के विकल्पों के विकास की दिशा में भारत सहित अनेक देश शोध कर रहे हैं। हैदराबाद स्थित रासायनिक प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा एक ऐसे यौगिक का संश्लेषण किया गया है, जिसके गुण तो हैलोकार्बन जैसे हैं, परन्तु उनमें क्लोरीन की अनुपस्थिति है। इस यौगिक के उपयोग से ओजोन का संरक्षण किया जा सकता है।

(6) अम्ल वर्षा (Acid Rain)

मानव के लिये जल विभिन्न उपयोगों हेतु महत्त्वपूर्ण है। यह जल मुख्य रूप से वर्षा से प्राप्त होता है। वर्तमान समय में मानवजनित स्रोतों से निःसृत सल्फर डाई आक्साइड (SO_2) वायुमण्डल में पहुँच कर जल से मिश्रित होकर सल्फेट तथा सल्फूरिक अम्ल (H_2SO_4) का निर्माण करती है। जब यह अम्ल वर्षा के साथ धरातल पर पहुँचता है तो इसे अम्ल वर्षा कहते हैं। जल की अम्लीयता को (pH)

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.

Disclaimer: This study material has been taken from the books and created for the academic benefits of the students alone and I do not seek any personal advantage out of it.